वेद, पुराण एवं धर्मशास्त्रों के पर्यावरण संतुलन विषयक् विचार

*डॉ. अनुजा शर्मा

भारत के मनीषियों ने हजारों वर्ष पूर्व मानव–जीवन के कल्याणार्थ पर्यावरण का महत्त्व और उसकी रक्षा, प्रकृति से सानिध्य, संवेदनशीलता, रोगों के उपचार तथा स्वास्थ्य संबंधी अनेक उपयोगी तत्व निकाले थे। वेदकालीन समाज में न केवल पर्यावरण के सभी पहलुओं पर चौकन्नी दृष्टि थी वरन उसकी रक्षा और महत्त्व को भी स्पष्ट किया गया था। उन लोगों की भी दृष्टि पर्यावरण–प्रदूषण की ओर थी, अतः उन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में पर्यावरण की रक्षा की और समाज का ध्यान इस और आकर्षित किया था। वे भूमि को इश्वर का रूप ही मानते थे। पर्यावरण की रक्षा पूजा का एक अविभाज्य अंग था, जैसा कि कहा भी गया है –

यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।। (अथर्ववेद 10/7/32)

अर्थात् "भूमि जिसकी पादस्थानीय और अन्तरिक्ष उदर के समान है तथा धुलोक जिसका मस्तक है, उन सबसे बड़े ब्रह्म को नमस्कार है।"

यहाँ परमब्रह्म परमेश्वर को नमस्कार कर प्रकृति के अनुसार चलने का निर्देश किया गया है। वेदों के अनुसार प्रकृति एवं पुरुष का संबंध एक दूसरे पर आधारित है। ऋग्वेद में प्रकृति का मनोहारी चित्रण हुआ है वहाँ प्राकृतिक जीवन को ही सुख–शान्ति का आधार माना गया है। किस ऋतु में कैसा रहन–सहन हो, क्या खान–पान हो, क्या सावधानियाँ हों, इन सबका सम्यक् वर्णन है ।

ऋग्वेद (7/103/7) में वर्षा ऋतु को उत्सव मानकर शस्य श्यामला प्रकृति के साथ अपनी हार्दिक प्रसन्नता की अभिव्यक्ति की गयी है –

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।

संवत्सरस्य तदहः परिष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव।।

अर्थात् "जैसे जिस दिन पहली वर्षा होती है, उस दिन मेढ़क सरोवरों को पूर्ण रूप से भर जाने की कामना से चारों और बोलते हैं, इधर उधर स्थिर होते हैं, उसी प्रकार है ब्राह्मणों! तुम भी रात्रि के अनन्तर ब्रह्म मुहूर्त में जिस समय सौम्य वृद्धि होती है, उस समय वेद–ध्वनि से परमेश्वर के यज्ञ का वर्णन करते हुए वर्षा ऋतु के आगमन को उत्सव की तरह मनाओ।"

अथर्ववेद (का. 11 अ.2 सूक्त 4) में सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर में व्याप्त सचेष्ट 'प्राण' को मेघ जल के समान माना है

नमस्ते प्राण क्रन्द्राय नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते । । 2 ।।
यत् प्राण स्तनयित्नुनाभिक्रन्दन्योषधीः ।
प्रवीयन्ते गर्भान् दधतेऽथो ब्रहवीर्वि जायन्ते । 13 । ।
यत् प्राण ऋतावागतेऽभिक्रन्दत्योषधीः ।
सर्व तदा प्र मोदत यत् किं च भूम्यामधि ।। 4 । ।
यदा प्राणो अभ्यवर्षाद् वर्षेण पृथिवी महीम् ।
पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ।। 15 ।।
अभिवृष्टा ओषधयः प्राणेन समवादिरन्।
अयुर्वै न प्रातोतरः सर्वा नः सुरभीरकः ।। 16 ।।

अर्थात् हे प्राण । तुम ध्वनि करने वाले हो, तुम मेघजल में प्रविष्ट एवं गर्जनशील हो, तुमको प्रणाम है। तुम विद्युत रूप में चमकते हो, वर्षा करने वाले हो। तुमको नमस्कार है। सूर्यात्मक मेघ ध्वनि से जब प्राण औषधि आदि को अभिलक्षित करता हुआ गर्जता है तब वे औषधि आदि गर्भधारण में समर्थ होती हैं, वर्षा ऋतु की प्राप्ति पर जब प्राण औषधियों के प्रति गर्जन करता है, तब सब हर्षित होते हैं पृथिवी के सभी प्राणी आनन्द में भर जाते हैं। जब विस्तृत पृथिवी को वर्षा द्वारा सब और से सींचते, तब गवादि पशु प्रसन्न होते हैं। प्राण द्वारा सींची गई औषधियाँ उससे कहती हैं कि हे प्राण। तुम हमको सुन्दर गन्ध वाली बना और हमारे जीवन की वृद्धि कर ।'

इस प्रकार वेदों में वर्षा के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। वेदों में पर्यावरण को अनेक वर्गों में बाँटा जा सकता है। जैसे – (1) वायु, (2) जल, (3) ध्वनि, (4) खाद्य और (5) मिट्टी वनस्पति, वनसम्पदा, पशु .. पक्षी – संरक्षण आदि। सजीव जगत् के लिए पर्यावरण की रक्षा में वायु की स्वच्छता का प्रथम–स्थान है। बिना प्राणवायु (ऑक्सीजन) के क्षण भर भी जीवित रहना संभव नहीं है। ईश्वर ने प्राणिजगत के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी के चारों और वायु का सागर फैला रखा है। हमारे शरीर के अंदर रक्त– वाहिनियों में बहता हुआ रक्त बाहर की तरफ दबाब डालता रहताहै यदि इसे संतुलित नहीं किया जाय तो शरीर की सभी धमनियाँ फट जायेंगी तथा जीवन नष्ट हो जायेगा । वायु का सागर इससे हमारी रक्षा करता है। पेड़–पौधे ऑक्सीजन देकर क्लोरोफिल की उपस्थिति में इसमें से कार्बनडाईऑक्साइड अपने लिए रख लेते हैं और आँक्सीजन हमें देते है ।। इस प्रकार पेड़ पौधे वायु की शुद्धि द्वारा हमारी प्राण रक्षा करते हैं।

वायु की शुद्धि पर बल

वायु की शुद्धि जीवन के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। इस तत्व को यजुर्वेद (27/12) में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः ।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ।।

अर्थात् "उत्तम गुणवाले पदार्थों में उत्तम गुणवाला प्रकाश–रहित तथा सबको प्राप्त होने वाला (तनूनपात्) जो वायु शरीर में नहीं गिरता, वह कामना करने योग्य मधुर जल के साथ श्रोत्र आदि मार्ग को प्रकट करे, उसको तुम जानो।"

अथर्ववेद में वायु प्रदूषण विद्यमान होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। रोगकारी जन्तुओं के वायु में सम्मिलित होन पर जडिं मणि को शरीर पर धारण कर इनकी शक्ति को क्षीण किया जाता था। वायु में व्याप्त अज्ञात रोगों के कीटाणुओं एवं यक्ष्मा रोग के कीटाणुओं को हवन द्वारा दूर करने के उल्लेख अथर्ववेद में मिलते हैं –

दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षयाणाः सदैव ।
मणि विष्कन्धदूषणं जडिंगडं बिभृमो वयम् ।
जड्गिडो जम्भाद विशराद् विष्कत्वादभिशोचनात् ।
मणिः सहस्तवीर्यः परिणः पातु विश्वतः ।। (का. 2 अ. 1 सूका 12)

वायु को शुद्ध और अशुद्ध दो भागों में बांटा गया है–

(1) श्वास लेने के योग्य शुद्ध वायु तथा (2) जीवमात्र के लिए हानिकारक दूषित वायु –

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातुयद्रपः।। (ऋक् 10/137/2)

अर्थात् "प्रत्यक्षभूत दोनों प्रकार की हवाएँ सागर पर्यन्त और समुद्र से दूर प्रदेश– पर्यन्त बहती रहती हैं। हे साधक। एक तो तेरे लिए बल को प्राप्त कराती है और एक जो दूषित है, उसे दूर फेंक देती है।"

हजारों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों को ज्ञान था कि हवा कई प्रकार के गैसों का मिश्रण है, जिनके अलग–अलग गुण एवं अवगुण हैं इनमें ही प्राणवायु (ऑक्सीजन) भी है, जो जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है–

यददौ वात ते गृहेद्रमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ।। (ऋक. 10/186/3)

अर्थात् "इस वायु के गृह में जो यह अमरत्व की धरोहर स्थापित है, वह हमारे जीवन के लिए आवश्यक है।"

शुद्ध वायु कई रोगों के लिए औषधि का काम करती है, यह निम्न ऋचा में दिखाया गया है –

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः।
दक्षं ते भद्रमाभार्ष परा यक्ष्मं सुवाभि ते ।। (ऋक. 10/137/4)

अर्थात् यह जानो कि शुद्ध वायु तपेदिक जैसे घातक रोगों के लिए औषधि रूप है। हे रोगी मनुष्य । मैं वैद्य तेरे पास सुखकर और अहिंसाकर रक्षण में आया हूँ। तेरे लिए कल्याण कारक बल को शुद्ध वायु के द्वारा लाता हूँ और तेरे जीर्ण रोग को दूर करता हूँ। हृदय रोग, तपेदिक तथा निमोनिया आदि रोगों में वायु को बाहरी साधनों द्वारा लेना जरूरी है, यहाँ यह संकेत है –

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूँषि तारिषत् ।। (ऋक. 10/186/1)

अर्थात् "याद रखिए शुद्ध ताजी वायु अमूल्य औषधि है, जो हमारे हृदय के लिए दवा के समान उपयोगी है, आनन्ददायक है। वह उसे प्राप्त कराता है और हमारी आयु को बढ़ाता है।"

हमारे दूर दृष्टा ऋषि और चिन्तक विद्वान पर्यावरण के प्रति पूर्णतः सचेष्ट रहा करते थे। प्राचीन भारत में एक ही पूजा पद्धति सर्वत्र प्रचलित थी और वह थी 'यज्ञ'। राजा हो या रंक, गृहस्थ हो या वानप्रस्थ सभी यज्ञ के द्वारा वायु को शुद्ध रखते थे।

जल प्रदूषण और उसका निदान

अथर्ववेद के (का. 6 अ. 3 सूक्त 23–24) में निरन्तर प्रवाहित जल को औषधियों को प्रदान करने वाला माना है –

सस्रुरुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च ससुषीः ।

वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरूप हवये ।।1।। 23 सूक्त
हिमवतः प्रस्तवन्ति सिन्धौ समह संगमः ।
आपो ह महयं तद् देवीदर्ददन ह्यद्योतभेषजम् ।।1।। 25 सूक्त

अर्थात् मैं उत्तम कर्म करने वाला संसार की रक्षा का कर्म करने के कारण निरन्तर प्रवाहित जलों का आह्वान करता हूँ ।

हिमालय से पापनाशक गंगा आदि का जल प्रवाहित होता है, वह समुद्र में संयुक्त होते है। यह जल मुझे ऐसी औषधियाँ प्रदान करे जो हृदय के दाह का शमन करने में समर्थ हों ।

शुद्ध जल को अथर्ववेद में अनेक व्याधियों को दूर करने वाला चिकित्सक माना है–

यन्मे अक्ष्योरा दिद्योत पाष्ण्र्योः प्रपदोश्च सत् ।
आपस्तत् सर्वनिष्करन् भिषजां सुभिषत्तमाः ।। 2 ।।
सिन्धुपत्नी सिन्धुराज्ञीः सर्वा या नद्य स्थन ।
दत्त नस्तस्य भेषज तेना वो भुवन जा है ।। 3 ।। (अथर्ववेद का. 6 अ. 3 सूक्त 24)

अर्थात् नेत्रों को पाष्णि को और प्रपद को सन्ताप देने वाले सब रोगों को देवता के समान जल मिटा दें। यह जल रोग दूर करने वाली औषधियों में परम चिकित्सक है। हे जलों तुम्हारा स्वामी समुद्र है, तुम उसकी पत्नी हो। तुम रोगों को दूर करने वाली औषधि प्रदान करो, जिससे हम अन्नादित बल देने वाले पदार्थों का सेवन करने में समर्थ हों ।

जल मानव–जीवन में पेय के रूप में सफाई एवं धोने में, वस्तुओं को ठण्डा रखने तथा गर्मी से राहत पाने में, विद्युत उत्पादन में, नदियों–झीलों और समुद्र में सवारियों और सामानों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाने के लिए भाप इंजनों को चलाने में, अग्नि बुझाने में, कृषि सिंचाई तथा उद्योगों और भोजन बनाने में अति आवश्यक है। सभी जीवधारी जल का उपयोग निरन्तर करते रहते हैं, जल के बिना जीवन संभव नहीं है। औद्योगिकीकरण के परिणामस्वरूप कल–कारखानों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि, कारखानों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ कूड़ा–करकट, रसायनिक अपशिष्ट आदि नदियों में मिलते रहते हैं। अधिकांश कल–कारखाने नदियों–झीलों तथा तालाबों के निकट हाते हैं, जनसंख्या वृद्धि के कारण मल–मूत्र नदियों में बहा दिया जाता है, गाँवों तथा नगरों का गंदा पानी प्रायः एक बड़े नाले के रूप में नदियों–तालाबों और कुओं में अंदर ही अंदर आ मिलता है। समुद्र में परमाणु विस्फोट से भी जल प्रदूषित हो जाता है। वेदों में जल प्रदूषण की समस्या पर विस्तार से प्रकाश पड़ा है।

मकान के पास ही शुद्ध जल से भरा हुआ जलाशय होना चाहिये–

इमा आपः प्र भराम्ययक्ष्मा यक्ष्मनाशनीः।
गृहानुप प्र सीदाम्यमृतेन सहागिन्ना ।। (अथर्ववेद 3/12/9)

अर्थात् अच्छे प्रकार से रोग रहित तथा रोगनाशक इस जल को मैं लाता हूँ। शुद्ध जलपान करने से मैं मृत्यु से बचा रहूंगा। अन्न, धृत, दुग्ध आदि सामग्री तथा अग्नि के सहित घरों में आकर अच्छी तरह बैठता हूँ।

शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घ आयु प्रदान करने वाला, प्राणों का रक्षक तथा कल्याणकारी है, यह भाव निम्न ऋचा में देखिये–

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शं योरभि स्रवस्तु नः ।। (ऋक. 10/9/4)

अर्थात् "सुखमय जल हमारे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा रक्षा के लिए कल्याणकारी हो। जल हम पर सुख समृद्धि की वर्षा करे।"

जल चेहरे का सौन्दर्य तथा कोमलता और कान्ति बढ़ाने में औषधि रूप है। भोजन के पाचन में अधिक जल पीना आवश्यक है, यह विचार निम्न ऋचा में देखिए–

आपो भद्रा धृतमिदाप आसन्नग्रीषोमौ बिभ्रत्याप इन्ताः ।
तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ।। (अथर्ववेद 3/13/5)

अर्थात् "याद रखिये, जल मंगलमय और घी के समान पुष्टिदाता है तथा वही मधुरतारी जलधाराओं का स्रोत भी हैं भोजन के पचाने में उपयोगी तीव्र रस है। प्राण और कान्ति, बल और पौरुष देने वाला, अमरता की ओर ले जाने वाला मूल तत्व है।[ष] आशय यह है कि जल के उचित उपयोग से प्राणियों का बल तेज, दृष्टि और श्रवण शक्तियाँ बढ़ती हैं। एक ऋचा में कहा गया है कि जल से ही देखने–सुनने एवं बोलने की शक्ति प्राप्त होती हैं भूख, दुःख, चिन्ता, मृत्यु के त्यागपूर्वक अमृत (आनन्द) प्राप्त होता है–

आदित्पश्याम्युत वा शृणोम्या मा घोषो गच्छति वाङ्मासाम।
मन्ये भेजानो अमृतस्य तर्हि हिरण्य वर्णा अतृपं यदा वः ।। (अथर्ववेद 3/13/6)

तात्पर्य यह है कि देखने–सुनने एवं बोलने की शक्ति बिना पर्याप्त जल के उपयोग के नहीं आती। जल ही जीवन का आधार है। अधिकांश जीव जल में ही जन्म लेते हैं और उसी में रहते हैं । है जलधारकों । मेरे निकट आओ। तुम अमृत हो। कृषि – कर्म का महत्त्व निम्न ऋचा में देखिये, किसानों के नेत्र जल के लिए वर्षा ऋतु में बादलों पर ही लगे रहते हैं –

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ।। (ऋक. 10/9/3)

हे जल! तुम अन्न की प्राप्ति के लिये उपयोगी हो। तुम पर जीवन तथा नाना प्रकार की औषधियाँ, वनस्पतियाँ एवं अन्न आदि पदार्थ निर्भर हैं। तुम औषधि रूप हो। "

अथर्ववेद के ऋषियों में जलों के श्रेष्ठ भाग को ही समुद्र की ओर जाने देने की चेतना विद्यमान थी–.

अपामग्रमसि समुद्रं वोभ्यवसृजामि (अथर्ववेद, 16.1.6)

अथर्ववेद में मधु अर्थात् पुष्प–पराग आदि से होने वाले जल प्रदूषण का उल्लेख प्राप्त होता है।

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जायो सध्यरीयताम्, प्रञ्चतीर्मधुना पयः ।। (का. 1. अ. 1. सूक्त 4.1)

नदी व तालाबों आदि के तट पर स्थित वृक्षादि के फूल पत्ते व पराग आदि गिरकर जल में सड़ जाते हैं, जिससे जल प्रदूषित हो जाता है। जलाशय में गाय आदि पशुओं के द्वारा जल पीने का उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है जो जल प्रदूषण को इंगित करता है –

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह। ता नो हिन्वन्त्यध्वरम् ।
अपो देवीरूपहवये यत्र गावः पिवन्तिनः। सिन्धुभ्यः कर्त्वहविः। (अ. वे.आ./अ. सूक्त 4.203)

हमारे प्राचीन ऋषि मुनिया ने दूषित जल का स्मृश भी व्याजय माना है। वे स्वच्छ जल को परम कल्याणकारी रस मानते थे जो औषधी के समान व्याधि निवारण के काम आता था–

आजो हिष्ठा मयोभुवस्ता न उर्जे उधातन। मये रणाय यक्षसे ।।
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयनेह न नः। उशतीरित मातरः ।। 2 ।।
तस्मा अरं गमाम वो यस्य यक्षाय जिन्वय। आपो जनयथा च न ।। 3 ।।
ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्। अपो याचामि भेषजम् ।। 4 ।।

(अथर्ववेद का. 1 अ. 1 सूक्त 5)

अथर्ववेद में स्वच्छ जल को दिव्य गुणों से सम्पन्न, इश्वर प्राप्ति में सहायता करने वाला, औषधियों से युक्त पीने योग्य शरीर को पुष्ट करने वाला माना है। खोदे हुए कुए आदि का जल, घड़े आदि बर्तन में भरकर लाया गया जल, वर्षा से प्राप्त हुआ जल शुद्ध और गृहण योग्य माना है –

श नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ।। 1 । ।

.....

अप्सु में सोमो अब्रबीदन्तविश्वानि भेष्जजा ।
शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सभु वार्षिकीः । । 4 । ।

(अर्थवेद) का. 1 अ.2 सूक्त 6.1.2,3.4)

ध्वनि–प्रदूषण एवं उसका निदान

भजन–कीनन धार्मिक गीत गान, धर्मग्रन्थों का पाठ, प्रार्थना, स्तुति, गुरू ग्रन्थ साहिब का अखण्ड पाठ, रामायण, मीरा तथा नानक एवं कबीर के भक्ति प्रधान भजन उपयोगी है। संगीत भक्ति–पूजा का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। खेद है कि आजकल ध्वनि के साधन का दुरूपयोग हो रहा है। रेडियो, ट्रांजिस्टर, टी. वी. ध्वनि प्रसारक यन्त्र जोर–जोर से सारे दिन कान फाड़ते रहते हैं। इससे सिरदर्द, तनाव अनिद्रा आदि फैल रहे हैं। वेदों में कहा गया है कि हम स्वास्थ्य की दृष्टि से अधिक तीखी ध्वनियों से बचें, आपस में वार्ता करते समय धीमा एवं मधुर बोलें –

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्या स्वसारभुत स्वसा।
समयञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया।।

(अथर्ववेद 3/30/3)

अर्थात् भाई–भाई से, बहन–बहन से अथवा परिवार में कोई भी एक दूसरे से द्वेष न करे। सब सदस्य एकमत और एकव्रती होकर आपस में शान्ति से भद्र पुरुषों के समान मधुरता से बातचीत करें –

जिव्हाया अग्रे मधु मे जिव्हाभूते मधूलकम।
गमेदह क्रसावसो मम चित्तमुपायसि ।।

(अथर्ववेद 1/34/2)

अर्थात् मेरी जीभ से मधुर शब्द निकले। भगवान् का भजन–पूजन–कीर्तन करते समय मूल में मधुरता हो। मधुरता मेरे कर्म में निश्चय से रहे। मेरे चित्त में मधुरता बनी रहे।

ध्वनि प्रदूषण से मुक्त होने के लिए अथर्ववेद में कल्याण करिणी व सुन्दर वाणी बोलने पर विशेष बल दिया गया है। वेद के अनुसार हमें उतना ही बोलना चाहिए जितना आवश्यक हो । राजा के माध्यम से कहा गयाहै कि वेदवेत्ता पुरुष की वाणी जो नष्ट नहीं हो सकती है मत नाश करें।

उपब्दे पुनर्वो यन्तु यातवः पुनर्हेति किमीदिनीः ।
यस्य स्थ तमत्त यो व प्राहैत् तमत्त स्वा मांसान्वयत्तः । ।

(अथर्ववेद 2,24,6)

उप नो रमसि सूक्तेन वचसा वयं भद्रेण वचसा वयम् ।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन ।

(अ. वे.का. 20,127,14)

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा ।
सम्यञ्चयः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया ।

(अ. वे.का. 3 सूक्त 30–3)

इन्द्र जठरं नव्यो न पृणस्व मधोर्दिवो न ।
अस्य सुतस्य स्वर्णोप त्वा मदाः सुवाचोअगुः ।

(अ. वे.का. 2 सूक्त 5–2)

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ।

(अ.व.का. 5 सूक्त 18–1)

खाद्य प्रदूषण से बचाव

वेदों ने खाद्य के संबंध में वैज्ञानिक आधार पर निष्कर्ष निकाला है।

जैसे –

मनुष्य पाचन शक्ति से भोजन को भली भाँति खुद पचाये, जिससे वह शारीरिक और आत्मिक बल बढ़ाकर उसे सुखदायक बना सके। इसी प्रकार पेय पदार्थों, जैसे जल–दूध इत्यादि के विषय में भी उल्लेख है

यत् पिबामि सं पिबामि समुद्र इव संपिबः।
प्राणानमुष्य संपाय सं पिबामो अमुं वयम् ।। (अथर्ववेद 6/135/2)

अर्थात् मैं जो कुछ पीता हूँ, यथाविधि पीता हूँ, जैसे यथाविधि पीनेवाला समुद्र पचा लेता है। दूध–जल जैसे पेयपदार्थों को हम उचित रीति से पिया करें। जो कुछ खायें अच्छी तरह से चबाकर खायें

यद् गिरामि सं गिरामि समुद्र इव संगिरः ।
प्राणानमुष्य संगीर्य सं गिरामो अमुं वयम् ।। (अथर्ववेद 6/135/3)

अर्थात् जो भी खाद्य पदार्थ हम खायें, यथाविधि खायें, जल्दबाजी न करें। खूब चबाचबाकर शांतिपूर्वक खायें। जैसे यथाविधि खाने वाला समुद्र सब कुछ पचा लेता है। हम शाक–फल अन्य आदि रसवर्धक खाद्य पदार्थ ही खायें।

अथर्ववेद के काल में भी खाद्य पदार्थों में प्रदूषण की समस्या थी। कृषि से उत्पन्न खाने योग्य धान्य, पीने योग्य दूध, खाने योग्य और अयोग्य पदार्थों को प्रदूषण रहित (विषरहित) करने का उल्लेख प्राप्त होता है।

यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यदाद्यं यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि। (अ.वे. 8/2/19)

मिट्टी (पृथ्वी) एवं वनस्पतियों में प्रदूषण की रोकथाम

जहाँ जहाँ मल गया हो, वह स्थान शुद्ध करने की प्रार्थना की गयी है –

सीसे मृऽदवं नडे मूडदव मग्नौ संकसुकेचयन्।
अथ अत्यां रामायां शीर्षक्ति मुपबर्हणे।
सीसे मलं सादयित्वा शीर्षक्तिमुपबर्हणे।
अव्यामसिक्न्यां मृष्टवा शुद्धा भवत यज्ञियाः।। (अथर्ववेद का. 12 सूक्त 2.12.20)

अथर्ववेद के 12वें काण्ड के प्रथम सूक्त में पृथ्वी का महत्त्व प्रदर्शित किया गया है। सभी प्राणी, पृथ्वी के पुत्र हैं। कहा गया है

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।

पृथ्वी कानिर्माण कैसे हुआ हे, इसका वर्णन मिलता है–

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता।
तस्यै हिरण्यवक्ष से पृथिव्या अकरं नमः।। (अथर्ववेद 12/1/26)

अर्थात् "भूमि चट्टान, पत्थर ओर मिट्टी है। मैं उसी हिरण्यगर्भ पृथ्वी के लिए स्वागत वचन बोलता हूँ।''

नाना प्रकार के फल, औषधियाँ, फसलें, अनाज, पेड़–पौधे इसी मिट्टी पर उत्पन्न होते हैं। उन पर ही हमारा भोजन निर्भर है। अतः पृथ्वी को हम माता के समान आदर दें।

यस्मानन्नं व्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्च कृष्टयः।
भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमोऽस्तु वर्षमंदसे ।। (अथर्व 12/1/42)

याद रखिए भोजन और स्वस्थ्य देने वाली सभी वनस्पतियाँ इस भूमि पर ही उत्पन्न होती हैं। पृथ्वी सभी वनस्पतियों की माता और मेघ पिता है क्योंकि वर्षा के रूप में पानी बहाकर यह पृथ्वी में गर्भाधान कराता है।

पृथ्वी में नाना प्रकार की धातुएँ ही नहीं, वरन् जल और खाद्यान्न, कन्द–मूल भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं, चतुर मनुष्य को उससे लाभ उठाना चाहिए–

यामन्वैच्छद्धविषा विश्वकर्मान्तरर्णवे रजसि प्रविष्टाम्।

भुजिष्यं पात्रं – निहितं गुहा यदाविर्भोगे अभवन्मातृमद्भयः।। (12/1/60)

भावार्थ यह है कि चतुर मनुष्य पृथ्वी तल के नीचे से कन्द–मूल खाद्यान्न खोजकर जीवन विकास करते हैं।

हम अपनी मिट्टी से न्याय नहीं कर रहे हैं। अंधाधुंध शहरीकरण, औद्योगिकीकरण के कारण वन तेजी से काटे जा रहे हैं। मिट्टी ढीली पड़ती जा रही है। खोत अनुपजाऊ हो गये हैं। पेड़ों के अभाव में वर्षा ऋतु भी अनियन्त्रित हो गयी है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्य–समस्या मिट्टी के प्रदूषण से फैली है।

भूमि या मिट्टी एक अति सीमित संसाधन है, जिसकी गुणवत्ता को यथावत बनाये रखना आवश्यक है। अथर्ववेद के समय ही भूमि प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गयी थी। इसके समाधान के लिए पृथिवी तत्व को पृथ्वी में मिलाने की बात कही गयी । ज्ञान के द्वारा पृथिवी पर व्याप्त प्रदूषण को दूर करने का प्रयास किया गया –

पृथिवीं त्वा पृथिव्यामा वेशयामि तनूः समानी विकृता ता एषा।

यद्यद् धुतं लिखितमर्पणेन तेन मा सुस्रोर्बह्मणापि तद् वपामि ।। (अ. वे. 12/3/22)

अथर्ववेद के 12 काण्ड का प्रथम सूक्त पूरा भूमि को समर्पित है जिसमें पृथिवी को ब्रह्म, तप, सत्य, यज्ञ, दीक्षा और वृहत् जल धारण करने वाली माना है तथा भूत और भवितव्य जीवों की पालनकत्री माना है।

अंतरिक्ष तथा द्यावापृथिवी इन तीनों का पर्यावरण संतुलित, स्वच्छ व प्रदूषा रहित होगा तभी मानव निभ्रय हो सकेगा, अतः वेदों के अनेक मंत्रों में अभय की प्रार्थनाएँ की गई है ।। एक मंत्र में कहा गया है कि अंतरिक्ष हमें निर्भय करें। दोनों घु और पृथिवी हमें निर्भय करें। पीछे से और आगे से आय हों। ऊपर से और नीचे से हमें अभय हो। इसका तात्पर्य है कि वैदिक जन आगे–पीछे, ऊपर नीचे चारों और से पर्यावरण के प्रति सजग थे।

अभयं ना करत्यतरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पाश्चादभयं पुरस्मादत्तरादधरादभयं नो अस्तु ।। 5 ।।
अभयं नच्यमभयं दिव नः सर्क आशा ममित्रं भवन्तु ।। 6 ।। (अ.वे. का. 19 सूक्त 15–5,6)

चरक संहिता में स्वीकार किया गया है कि शुद्ध पयावरण जितना प्राणी के लिए आवश्यक है उतना ही औषधियों के लिए आवश्यक है। प्रदूषण रहित वातावरण में परिष्कृत एवं पैदा की गयी औषधियाँ शरीर को स्वस्थ तथा ओजपूर्ण बनाती है। अशुद्ध वातावरण में उत्पन्न औषधियां, वनस्पति, अन्न जल आदि अपना यथावत् प्रभाव न दिखाकर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

स्वस्थस्यौजस्करं त्वेतद्विविधं प्रोक्तमोषधम् ।

यद् व्याधिनिर्धातकरं वक्ष्यते तच्चिकित्सते। (च.सं. उत्तर भाग 1.12)

अभेषजमित ज्ञेयं विपरीतं यर्दोषधात्।

तदसेव्यं निर्षव्यं तु प्रवक्ष्यामि यदौषधम् ।। (च.सं. 1.14)

आधुनिक संदर्भों में भी पर्यावरण समस्या का समाधान मानव के जागरूक होने से है। प्रदूषण व रोगाणुओं रूपी शत्रुओं से मानव अपना बचाव करे यह अथर्ववेद का महत्वपूर्ण संदेश हैं सारे वेद, पुराण धर्मशास्त्रों में यही बताया गया है कि अज्ञान से पर्यावरण संकट उत्पन्न होता है जबकि ज्ञान से पर्यावरण संकट दूर किया जा सकता है। जो ज्ञानविरोधी है वह पर्यावरणीय चेतना से शून्य है। ऐसा व्यक्ति पर्यावरण में प्रदूषण फैलाने के लिए उत्तरदायी है।

वैदिक ऋषि ही विश्व के प्रथम वैज्ञानिक थे जिन्होंने सृष्टि की प्रत्येक क्रिया–प्रतिक्रिया तथा पदार्थों का वैज्ञानिक पर्यवेक्षण किया। उनके अनुसार तीन वस्तुओं ने इस विश्व को आवृत्त किया हुआ है, वे हैं जल, वायु तथा औषधियाँ–

आपो वाता औषधयः तान्येकस्मिन भुवन आर्पितानि (अ.वे. 18.1.17)

ये तीनों शुद्ध तभी होंगी जब पर्यावरण शुद्ध होगा पृथ्वी के पर्यावरण को सुरक्षित रखने वाले तत्वों में एक यज्ञ भी है। अथर्ववेद में जीवेम शरदः शतम्श (19.67.2) का उद्घोष सुनाई पड़ता है। सौ वर्ष की आयु का रहस्य है अच्छा स्वास्थ्य। अच्छे स्वास्थ्य का कारण है शुद्ध पर्यावरण तथा शुद्ध पर्यावरण का कारण है विधि पूर्वक किया गया यज्ञ । यज्ञ से मेध्य जल की वर्षा, कृषि को विविध प्रकार से लाभ, विभिन्न रोगों का उपचार एवं पयावरण की शुद्धि होती हैं यज्ञों से प्राप्त मेध्य जल से औषधि–वनस्पतियाँ व पृथ्वीस्थ जल भी पावन होता है जिनके प्रयोग से प्राणी का शरीर तथा मन भी शुद्ध होता है ।

वातावरण के शुद्धीकरण तथा उसे प्रदूषण रहित रखने में सूर्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है वह चल और अचल जगत् की आत्मा है – सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च (ऋ. 1.115.1) सूर्य ऊर्जा और प्रकाश का भारी स्रोत है उसे त्रिभुवन का रक्षक कहा गया है (अ.वे. 13.2.2) सूर्य किरणों में रोग निवारण की अद्भुत क्षमता है वह रोगी को आयु देने वाला और विश्वभेषजीम्श (अ.वे. 7.107 (112).1) है। सूर्य की तेजस्वी रश्मियाँ पृथ्वी से जल का दोहर कर उसका पान करती है (ऋ. 1.164.7)। इस प्रकार शुद्ध अथवा अशुद्ध जैसा भी जल सूर्य रश्मियों को प्राप्त होगा वे तर्थेव पुनः पृथवी को लौटायेंगी। इस प्रकार प्राणवान सूर्य (अ.व. 19.27.7) द्वारा गृहीत अशुद्ध जल सूर्य व पृथ्वी दोनों के लिए घातक है।

वेदों और पुराणों में भगवान् भगवान् सूर्य की महत्ता और स्तुतियाँ

सूर्य हिंदुओं के पंच देवों में एक है। ऋग्वेद में सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है।

सूर्य आत्मा जगतस्थुषश्च। ऋक.। /115/1

वैदिक साहित्य में सूर्य का विशद वर्णन है और वैदिक व्यक्तियों के आधार पर ही पुराणों में विशेषकर भविष्य अग्नि और मत्स्य में सूर्य संबंध में परंपराओं का विकास हुआ है सूर्य निश्चित में सूर्य को ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का ही रूप माना जाग गया है।

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च रूद्र एष हि भास्करः। सूर्योपनिषत् पृ. 2/55

वैसे तो द्वादश आदित्य की गणना छत्रपति ब्रह्मांड में भी है किंतु पुराणों में द्वादशी द्वितीय की संख्या और नामावली अपेक्षाकृत सुनिश्चित हो गई थी इनके नाम क्रमश धातृ मित्र रूद्र वरुण सूर्य, भाग, विवश्रन, पूषन, सविता, त्वष्टा

और विष्णु मिलते हैं। मित्र आर्यमन के नाम से सूर्य की पूजा ईरानिओं में भी प्रचलित थी।

सूर्य संबंधी कई पौराणिक अध्यात्म का मूल वैदिक है सूर्य की उपासना का इतिहास भी वैदिक है। उत्तर द्वितीय साहित्य और रामायण महाभारत में भी सूर्य की उपासना की बहुत चर्चा है गुप्त काल के पूर्व से ही सूर्य के उपवासकों का एक संप्रदाय खड़ा हुआ था जो सौर नाम से प्रसिद्ध था। मुल्तान, मथुरा, कोणार्क कश्मीर, उज्जयिनी मोधरे गुजरात में आदि सूर्य उपासको के प्रसिद्ध केंद्र थे राजवंशों में भी कतिपय राजा सूर्य भक्त थे मैत्रक राजवंश और पुष्पभूति के कई राजा परम आदित्य भक्तों के रूप में माने जाते हैं।

***सह–आचार्य**
संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राजस्थान)

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. ऋग्वेद – चौखम्बा प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
2. यजुर्वेद – चौखम्बा प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
3. सूर्योपनिषद– चौखम्बा प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
4. शुल्क यजुर्वेद – चौखम्बा प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर
5. अथर्ववेद – चौखम्बा प्रकाशन, गीता प्रेस गोरखपुर